एक दवाई का अनिवार्य लाइसेंस दिया गया

एस. श्रीनिवासन

भारत के पेटेंट्स कंट्रोलर ऑफिस ने हैदराबाद स्थित दवा कंपनी नाटको को जो अनिवार्य लाइसेंस देने का आदेश दिया है वह एक मील का पत्थर है। अप्रैल 2005 में, संसद में पेटेंट एक्ट (1970) में किए गए संशोधन के करीब सात बरस बाद यह आदेश आया है।

मुद्दा और आदेश

अनिवार्य लाइसेंस दिए जाने से पहले सोराफेनिब का वॅसिलेट एस्टर नेक्सावार के ब्रांड नाम से बायर द्वारा बेचा जाता था; बायर ने ही इस दवा का आविष्कार किया था। इस दवा का इस्तेमाल कुछ खास किस्म के किडनी कैंसर के मरीज़ों का जीवन करीब चार से पांच साल और लीवर कैंसर के मरीज़ों का छः से आठ महीना बढ़ाने के लिए किया जाता है? अगर बायर ब्रांड की सोराफेनिब (नेक्सावार) इस्तेमाल करें तो इसकी लागत हर महीने में 120 गोली के लिए 2.80 लाख रुपए पड़ती है जबकि नाटको इसी दवा की एक महीने की खुराक 8,880 रुपए में दे रही थी; और सिप्ला द्वारा यही दवा भारत में 30,000 रुपए प्रति माह की खुराक पर बेची गई है।

इससे अलग, पेटेंट के कथित उल्लंघन के लिए बायर ने सिप्ला और नाटको पर जो केस किया है वह दिल्ली हाईकोर्ट में विचाराधीन है; कोर्ट ने यह साफ किया है कि ड्रग्स कंट्रोलर द्वारा किसी दवा को बनाने और बेचने का लाइसेंस देने को उस दवा की पेटेंट स्थिति से जोड़कर नहीं देखा जा सकता।

बायर ने हर तरह के वैध-अवैध, सही-गलत हथकंडे आज़माए ताकि शुरुआती दौर में ही अनिवार्य लाइसेंस की प्रक्रिया पटरी से उतर जाए। पर ऐसा न हुआ।

पहली दफा

अनिवार्य लाइसेंस जारी करना जिनेरिक प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देने और पेटेंट धारकों को बौद्धिक संपत्ति पर कुंडली मारकर बैठने से रोकने का एक तरीका है। भारत के पेटेंट कानून में अनिवार्य लायसेंस जारी करने का प्रावधान किया गया हैः सेक्शन 84 (निजी पक्ष की पहल पर), सेक्शन 92 (सरकार की पहल पर जब सरकार का मत हो कि जनहित में गैर-व्यापारिक इस्तेमाल के लिए, राष्ट्रीय आपात-काल या बेहद ज़रूरी होने पर अनिवार्य लाइसेंस जारी करने की ज़रूरत है), सेक्शन 92-क (जिनेरिक निर्यात के लिए) और 100 (सरकारी इस्तेमाल के लिए)।

उत्पाद पेटेंट व्यवस्था (2005) लागू होने के बाद 12 मार्च 2012 तक इन प्रावधानों के इस्तेमाल को लेकर कुछ खास नहीं किया गया था; पर यह ताज़ा आदेश एक मिसाल है तथा ऐसे और अनिवार्य लाइसेंस जारी होने की उम्मीद या संभावना है।

दवाइयों पर अनिवार्य लाइसेंस जारी करने वाले अधिकतर देशों ने इसे सिर्फ सरकारी इस्तेमाल के वास्ते जारी किया था, जैसे थाईलैंड, मलेशिया, इंडोनेशिया, कैमरून, इरिट्रिया, ज़ाम्बिया, ब्राज़ील और अन्य। नाटको को जारी अनिवार्य लाइसेंस पहला मामला है जब किसी निजी पक्ष को पेटेंट उपयोग के अधिकार दिए गए हैं। भारत उन चंद देशों में है जहां स्थानीय उत्पादन के लिए अनिवार्य लाइसेंस जारी करने का कोई मतलब है क्योंकि भारतीय उद्योग में इतनी क्षमता है कि वह ऐसी लाइसेंसी दवाइयों का असल में उत्पादन करके उस अनिवार्य लाइसेंस का उपयोग कर सके।

आदेश में निहित तर्क

दोनों पक्षों द्वारा रखी गई बातों के प्रकाश में, पेटेंट्स कंट्रोलर का 12 मार्च 2012 का आदेश मुख्यतया पेटेंट्स एक्ट के अनुभाग 84 की व्याख्या को आधार बनाता हैः

1. पेटेंट स्वीकृति की तारीख के तीन साल बीत जाने के बाद किसी भी समय कोई भी व्यक्ति निम्न में से किसी भी आधार पर अनिवार्य लाइसेंस पाने के लिए अर्ज़ी दे सकता हैः (क) पेटेंटशुदा आविष्कार से जनता की समुचित ज़रूरतें पूरी नहीं की गई हैं। (ख) पेटेंटशुदा आविष्कार उचित दाम पर जनता के लिए उपलब्ध नहीं है। (ग) उस पेटेंट का उपयोग भारत की भूमि पर नहीं किया जा रहा है।

सुनवाई के दौरान यह साबित किया गया कि नेक्सावार इन खास कैंसर के मरीज़ों में से सिर्फ 2 प्रतिशत को ही उपलब्ध है; इसलिए जनता की ज़रूरतें पूरी नहीं हुई थीं। ऊंची कीमत के चलते यह लोगों की पहुंच में नहीं थी। इसके अलावा यह भी सिद्ध हुआ कि नेक्सावर के पेटेंट का उपयोग भारत में नहीं किया जा रहा था। इसलिए नाटको अनिवार्य लाइसेंस की पात्रता रखता था; खास तौर से इसलिए भी कि बायर स्वैच्छिक लाइसेंस का नाटको का अनुरोध ठुकरा चुकी थी।

बायर ने अपने तर्कों को ताकत देने के लिए सिप्ला द्वारा सोराफेनिब उत्पादन की बात जोड़ने की कोशिश की - जैसे सिप्ला द्वारा निर्मित दवा की सस्ती कीमत (30,000 रुपए प्रति माह, यह दिखाने के लिए कि यह लोगों की पहुंच में है) या फिर यह कि सिप्ला द्वारा बनाई गई मात्रा बायर से कई गुना ज़्यादा थी (यह दिखाने के लिए कि दवा पर्याप्त मात्रा में मिल रही है)। पर पेटेंट्स कंट्रोलर ने इन बातों को दोमुंहा कहते हुए खारिज कर दिया क्योंकि बायर ने सिप्ला के खिलाफ सोराफेनिब पेटेंट उल्लंघन का मामला दायर किया हुआ है।

अलबत्ता, बायर को इस फैसले के खिलाफ सुप्रीम कोर्ट तक अपील करने की आज़ादी है और हो सकता है कि भारत का इससे ऊंचा कोई न्यायिक मंच बायर को इस फैसले पर अंतरिम स्टे दे दे और अनिवार्य लाइसेंस के आदेश को रद्द ही कर दे। पर फिलहाल हम चाहें तो इस आदेश को जनता की जीत के जश्न की तरह मना सकते हैं या चाहें तो यह रोना रो सकते हैं कि भारत में बौद्धिक संपत्ति को पर्याप्त सुरक्षा हासिल नहीं है। कुछ लोग शायद यह भी कहें कि इसी कमज़ोरी के चलते पश्चिम के आविष्कारों पर भारतीय दवा कंपनियां मुफ्तखोरी कर रही हैं।

इस आदेश द्वारा उठाए गए कई मुद्दों में से कम से कम दो कुछ समय तक चर्चा का विषय होंगेः 'किसी चीज़ का लोगों की खरीद क्षमता के भीतर होना (अफोर्डेबिलिटी)' और 'पेटेंट का उपयोग भारत में किया जाना'। दोनों ही जुम्लों को मूल कानून में परिभाषित नहीं किया गया है।

खरीद क्षमता के भीतर होना

'अफोर्डेबिलिटी' एक ऐसा जुम्ला है जिसे न तो पेटेंट कानून और न ही अर्थशास्त्र की पाठ्यपुस्तकों में परिभाषित किया गया है। औषधि की कीमत की तुलना मरीज़ की आमदनी से करना एक आम बात है जो कि ज़रा अधूरा तरीका है। न तो ऐसी जटिल बीमारियों वाले मरीज़ों को एक ही दवा लिखी जाती हैं, न ही ये दवाइयां मरीज़ के लिए एकमात्र खर्च होती हैं।

मौजूदा मामले में यह आसानी से समझा जा सकता है कि किसी गरीब देश में 2.8 लाख रुपए महीने की दवाई अधिकतर लोगों की हैसियत से बाहर है। देखा जाए तो सिप्ला की 30,000 रुपए और नाटकों की 8,800 रुपए की 'सस्ती' दवा भी क्षमता से बाहर ही मानी जाएगी। ऐसे में दो बातों की ज़रूरत आन पड़ती हैः तथाकथित नवीन दवाई का उत्पादन अनिवार्य लाइसेंस के तहत करने की वास्तविक लागत की गणना करने का कोई तरीका; और दूसरा कि एक नवीन दवा की असली लागत क्या है। इतना तो साफ है कि यदि उत्पादन करने वाली कंपनियां निजी हैं तो अधिकतर पेटेंटशुदा नई दवाइयों के दाम ऊंचे रखे जाएंगे। इसलिए एक अकेले आवेदक को अनिवार्य लाइसेंस देने का मतलब नहीं बनता, कम से कम लंबी अवधि के लिए तो नहीं। लाइसेंस का उपयोग करने में सक्षम अन्य पक्षों को भी अनिवार्य लाइसेंस अपेक्षाकृत आसानी से दिए जाने चाहिए, समझिए साल भर के भीतर-भीतर। इससे स्थानीय अनिवार्य लाइसेंस धारको के

बीच कुछ प्रतिस्पर्धा तो पैदा होगी। यह शायद बायर को भी आगाह करे कि वह नाटको को अनिवार्य लायसेंस देने से बचने के लिए किसी अन्य कंपनी को आसानी से स्वैच्छिक लाइसेंस (वह भी केवल निर्यात के लिए) जारी करने का नाटक करने से बाज़ आए। बेशक यह आदेश बायर को यह अधिकार देता है कि वह ज़रूरत पड़ने पर नाटको से प्रतिस्पर्धा के लिए अन्य पक्षों को लाइसेंस दे सकता है।

कायदे से, यह भी व्यवस्था होनी चाहिए कि भविष्य में अनिवार्य लाइसेंस के लिए आवेदन करने वाली कंपनियों ने अगर स्वैच्छिक लाइसेंस के लिए कोशिश न भी की हो तो यह बात उनके खिलाफ नहीं जानी चाहिए। यह भी उम्मीद की जाती है कि बायर जब इस अनिवार्य लाइसेंस आदेश के खिलाफ अपील करे तब अनिवार्य लाइसेंस पर रोक लगाने वाला स्थगन आदेश नहीं दिया जाएगा।

'अनिवार्य लायसेंस - नियम और शर्तें' के अंतर्गत पेटेंट्स एक्ट का सेक्शन 90 कहता है कि सेक्शन 84 के तहत लाइसेंस के नियम व शर्तें तय करते हुए कंट्रोलर यह सुनिश्चित करने की कोशिश करेगा कि लाइसेंस प्रमुख रूप से भारतीय बाज़ार में सप्लाई करने के लिए जारी किया जाए और अगर ज़रूरत हो तो लाइसेंस धारक पेटेंटशुदा उत्पाद को निर्यात भी कर सके।

यह उप-सेक्शन जनता की समुचित ज़रूरतें पूरी न होने का सूचक है और कहता हैः "भारत में निर्मित पेटेंटशुदा वस्तु निर्यात-बाज़ार में सप्लाई नहीं की जा रही है या उस बाज़ार को विकसित नहीं किया जा रहा है।" इसलिए यह स्पष्ट नहीं है कि आदेश में इस सेक्शन का हवाला क्यों नहीं दिया गया। हालांकि नाटको खुद ब खुद सिर्फ घरेलू खपत के लिए अनिवार्य लाइसेंस से संतुष्ट हो गया मगर ऐसे अनिवार्य लाइसेंस इसलिए भी वांछनीय हैं क्योंकि भारत में बनी दवाइयां विदेश के ज़रूरतमंदों तक भी पहुंच जाती हैं क्योंकि वे पेटेंटशुदा संस्करण से कम दाम की होती हैं। ठीक है कि निर्यात के लिए अलग अनिवार्य लाइसेंस होता है पर ऐसा क्यों नहीं हो सकता कि जब भी सेक्शन 84 के तहत भारत में अनिवार्य लाइसेंस जारी किया जाए तो वह उन देशों के लिए भी आशा पैदा करे जहां दवाइयों का टोटा है? और जब भी कोई अनिवार्य लाइसेंस धारक निर्यात करना चाहे, तो इसके लिए और कानूनी कार्रवाई और समय की बरबादी क्यों की जाए और पहले से ही बोझ तले दबे पेटेंट्स कंट्रोलर ऑफिस पर और बोझ क्यों डालें?

यह साफ नहीं है कि पेटेंट कंट्रोलर को विशेष रूप से यह क्यों कहना पड़ा कि नाटको द्वारा निर्मित दवा को रंग-रूप, नाम और पैकेजिंग में बायर के उत्पाद से अलग दिखना होगा - यह शर्त तो बायर नाटको पर लागू करवाना चाहता था। और क्यों आदेश में यह कहा गया कि लाइसेंसर (बायर) लाइसेंस-धारक (नाटको) को कोई कानूनी, तकनीकी, विनियामक, मेडिकल, मार्केटिंग-सम्बंधी या कोई और सहयोग नहीं देगा। पेटेंट एक्ट के सेक्शन 90 में कहीं भी न तो ऐसी किसी शर्त का निर्देश है और न ही ऐसा सुझाव।

उत्पाद कैसा दिखना चाहिए यह ड्रग्स कंट्रोलर का अधिकार क्षेत्र है। ड्रग्स कंट्रोलर पेटेंट सम्बंधी स्थिति को उत्पादन लाइसेंस और मार्केटिंग से नहीं जोड़ सकता मगर आदेश के इस हिस्से का आशय दूसरी तरफ से एक तरह का सम्बंध जोड़ने जैसा है। ऐसा मानिए कि यह पेटेंट्स कंट्रोलर ऑफिस की तरफ से यह ड्रग्स कंट्रोलर के क्षेत्र में घुसपैठ जैसा है। और अगर शब्दशः देखें तो निश्चित ही इसका आशय यह है कि नाटको को दवा के क्लीनिकल परीक्षण फिर से करने की नौबत आ सकती है ताकि सुरक्षा सम्बंधी डेटा मिल सके। (हो सकता है इस मामले में ऐसा न हो क्योंकि आदेश के पैरा 4 के अनुसार नाटको को न सिर्फ मूल दवा बल्कि उसके नुस्खे के उत्पादन और मार्केटिंग के लिए लाइसेंस मिला है।)

आदेश के पैरा 15 (ग) द्वारा लागू एक शर्त कहती है कि यह अनिवार्य लाइसेंस केवल अपने कारखाने में उत्पादन के लिए है और आउटसोर्सिंग नहीं की जाएगी। यह शर्त भी गैर ज़रूरी है और ड्रग्स कंट्रोलर के कार्यक्षेत्र में हस्तक्षेप है। क्या फर्क पड़ता है यदि लाइसेंसी

(नाटको) ड्रग्स कंट्रोलर की शर्तों के अनुसार सोराफेनिब किसी भी तरह से बनाए बशर्ते कि वह इसे 8,800 रुपए से ज़्यादा कीमत पर न बेचे?

इससे जुड़ा एक मुद्दा यह है कि अनिवार्य लाइसेंस के तहत बनने वाली दवाइयों को मूल्य नियंत्रण के अधीन रखा जाए या नहीं। हमें यह साफ लगता है कि ऐसा होना चाहिए क्योंकि अनिवार्य लाइसेंस देने का एक आधार मूल दवा का बहुत महंगा होना था। अगर सिप्ला दिल्ली हाई कोर्ट में पेटेंट उल्लंघन का केस हार जाती है और आगे अपील न करने का फैसला करती है तो भी वह अनिवार्य लाइसेंस की पात्र होगी और संभवतः उसे अनिवार्य लाइसेंस मिल भी जाएगा। क्या वर्तमान आदेश में वर्णित 8,880 रुपए का अधिकतम मूल्य सिप्ला पर खुद ब खुद लागू हो जाएगा? दवा के ज़रूरत से ज़्यादा दाम और इसकी वजह से दवा का सुलभ और क्षमता के भीतर न होना अनिवार्य लाइसेंस देने का कारण है, तो इस भावना को ध्यान में रखते हुए ऐसा ही होना चाहिए। तो सिप्ला को अपनी दवा की कीमत 30,000 से घटाकर 8,880 रुपए करनी होगी। और अगर दिल्ली हाईकोर्ट यह फैसला करता है कि बायर सोराफेनिब के पेटेंट की पात्रता नहीं रखता तो यह सीलिंग वाली कीमत उस पर भी खुद ब खुद लागू हो जाएगी। पर इसके लिए औषधि के अंतर्गत आने वाले राष्ट्रीय औषधि मूल्य निर्धारण प्राधिकरण को विशेष प्रयास करने होंगे।

इस आदेश में एक और फालतू व्यवस्था इंगित की जा सकती है- पैरा 15-झ जो विशेष तौर पर यह कहता है कि नाटको 600 ज़रूरतमंद मरीज़ों को मुफ्त दवा मुहैया करे। हालांकि यह दान की बछिया के दांत गिनने जैसा है, पर यह कहना होगा कि उदारता दिखाती ऐसी प्रशासनिक बारीकियां और सूक्ष्म स्तर पर प्रबंधन न सिर्फ पेटेंट्स कंट्रोलर के समय और संसाधनों की बर्बादी है बल्कि ऐसे मामलों में भावी आदेशों पर भी प्रभाव डाल सकती है। इसके अलावा पेटेंट्स कंट्रोलर स्वयं अपनी उस बात का खंडन कर रहे हैं जिसमें वह कहते है कि बायर के परोपकार से उन्हें कोई मतलब नहीं है हालांकि वह "निःसंदेह काबिले तारीफ" है।

पेटेंट्स कंट्रोलर अपने बौद्धिक संसाधनों में से थोड़ा-बहुत इस व्यापार में मिलने वाले भरपूर कमीशनों के बारे में सोचने पर खर्च करते तो लाभदायक होता। इस तथ्य पर भी विचार करना चाहिए कि नाटको खुदरा व्यापारियों और वितरण में लगे लोगों से तो कम ही मुनाफा बनाता है। कंट्रोलर इस बात पर चिंता करने में समय खर्च कर सकते थे कि अनिवार्य लाइसेंस प्रावधानों को किस तरह विस्तार देकर अधिक प्रतिस्पर्धा पैदा की जाए ताकि मरीज़ों को और सुविधा मिले।

पेटेंट का उपयोग

यह आदेश 'पेटेंट का उपयोग' जुम्ले के अर्थ की विस्तार से चर्चा करता है और फिलहाल तो इस पर राज़ी है कि भारत में पेटेंट की गई दवा का आयात भारत में उस पेटेंट के उपयोग के तुल्य नहीं है। 'एक समुचित मात्रा' में दवा का भारत में निर्माण होना ज़रूरी है। और पेटेंट के उपयोग से मतलब सिर्फ व्यापारिक उपयोग नहीं है। यह बायर का दुर्भाग्य है कि उसका यह तर्क नहीं माना गया कि स्थानीय उत्पादन का स्तर आर्थिक दृष्टि से व्यावहारिक नहीं है। यह विवाद का मसला है कि दाम घटाकर, और इस तरह, खपत बढ़ाकर क्या यह बायर के लिए आर्थिक रूप से व्यावहारिक हो जाता; या अगर अपने तर्क को मज़बूत करने के लिए बायर ने अनुसंधान और विकास पर होने वाले खर्चों का पूरा खुलासा करके यह बताया होता कि क्यों स्थानीय स्तर पर उत्पादन व्यावहारिक नहीं है।

अगर पेटेंट्स कंट्रोलर के तर्कों को देखा जाए तो साफ नहीं होता कि भारत में एक 'समुचित मात्रा' में दवा का उत्पादन होने का मतलब क्या है। क्या इसका मतलब है संभावित मांग की एक खास प्रतिशत तक बिक्री? अगर ऐसा है तो कितना प्रतिशत ठीक रहेगा? और उत्पादन का मतलब सिर्फ नुस्खे का उत्पादन है या नुस्खे और उससे जुड़ी मूल औषधि का उत्पादन भी है? क्या मूल औषधि का आयात किया जा सकता है और सिर्फ उसके

नुस्खे भारत में बनाए जा सकते हैं? अगर मूल औषधि को भारत में बनाया जाना है और सिर्फ स्थानीय तौर पर बेचा जाना या इस्तेमाल होना है तो शायद यह अनिवार्य लाइसेंस पाने वाली एक भारतीय कंपनी के लिए आर्थिक रूप से लाभदायक न हो और इसलिए ऐसे अनिवार्य लाइसेंस में नुस्खे और मूल औषधि के निर्यात के प्रावधान निहित रूप से मौजूद होने चाहिए। पुनः अगर मूल औषधि भारत में बनती है तो उत्पादन की प्रक्रिया में क्या-क्या शामिल है? क्या अंतिम मूल औषधि के एक चरण पहले के मध्यवर्ती यौगिक/रसायन से मूल औषधि में परिवर्तन का मतलब उत्पादन है जो कि भारत में आयातित पुर्ज़े जोड़कर कार बनाने जैसा ही है? यह सैद्धांतिक सवाल नहीं है क्योंकि सोराफेनिब की मूल औषधि और उसके मध्यवर्ती रसायन कई चीनी कंपनियों द्वारा बनाए जाते हैं जो उन्हें निर्यात करने को राज़ी हैं। पता चला है कि भारत में भी सोराफेनिब मूल औषधि का एक उत्पादक है।

इन मुद्दों पर तो समय के साथ धीरे-धीरे स्पष्टीकरण होगा मगर आम तौर पर यह तो स्वीकार किया जाता है कि बाज़ार को कई स्थानीय निर्माताओं के लिए खोलना अतंतः देश की उत्पादक क्षमता को बढ़ाता है हालांकि यह आदेश इसकी इजाज़त नहीं देता क्योंकि यह तो सिर्फ आवेदक को अनिवार्य लाइसेंस देता है। भारत में मूल औषधि उत्पादन का रिकॉर्ड देखें, तो इस प्रक्रिया में उत्पादन के कई पूर्व चरण पहले से मौजूद होने की उम्मीद की जा सकती है। इसलिए यह आशा की जाती है कि सोराफेनिब के अनिवार्य लाइसेंस के अन्य आवेदकों (और भविष्य में ऐसे अन्य उत्पादों) को अपेक्षाकृत आसानी से अनिवार्य लाइसेंस दिए जाएंगे।

पिछले 20 सालों में भारत में बहुराष्ट्रीय कंपनियां महज़ व्यापारी बन गई हैं और उन्होंने मूल औषधि और नुस्खों के उत्पादन के अपने अधिकांश स्थानीय कारखाने बंद कर दिए हैं। भारत में बहुराष्ट्रीय कंपनियों के सबसे ज़्यादा बिकने वाले ब्रांड्स कांट्रेक्ट उत्पादन के तहत बनाए जाते हैं। आदेश में पेटेंट का उपयोग किए जाने की व्याख्या को एक यथायोग्य दंड के रूप में देखे जाने की उम्मीद है।

इससे सम्बंधित एक और कदम है जो पेटेंट्स कंट्रोलर ऑफिस को बहुत पहले उठा लेना चाहिए था। कंट्रोलर को यह देखना चाहिए कि कितने और पेटेंट धारक हैं जिन्हें ऊंची कीमत वाली ज़रूरी दवाइयों पर पेटेंट मिला हुआ है, और वे पेटेंट के स्थानीय स्तर पर उपयोग सम्बंधी नियम पर अमल नहीं कर रहे हैं। उसे खुद होकर मामले को हाथ में लेते हुए उन पेटेंट धारकों से यह पूछना चाहिए कि क्यों न उनके पेटेंट रद्द कर दिए जाएं और क्यों न उचित अनिवार्य लाइसेंस प्रदान कर दिए जाएं। अगर ऐसी कार्रवाई होती है तो कम से कम निम्नलिखित दवाइयों के पेटेंट जांच के घेरे में आने की संभावना हैः डासिटिनिब, निलोटिनिब, एरलोटिनिब, सुनीटिनिब, पेजाइलेटेड इंटरफेरॉन, एंटेकावीर और शायद राल्टेग्रावीर, एट्राविरीन, रिल्पीविरीन मॅराबिरॉक। ये सब एच.आई.वी. व हेपेटाइटिस बी और सी की प्रतिरोधी किस्मों और कई तरह के कैंसरों में उपयोगी हैं।

कायदे से तो भारत सरकार सेक्शन 100 के तहत सरकारी इस्तेमाल के लिए पेटेंट का उपयोग करने की अर्जी दे सकती है; सेक्शन 100 उन परिस्थितियों पर लागू होता है जहां "सरकार को गैर व्यावसायिक आधार पर पेटेंट दवाई को बनाने, प्राप्त करने/पाने, वितरित करने और बेचने की ज़रूरत होती है।" पर उसके लिए भारत सरकार को ऐसी दवाइयों को मुफ्त या रियायती दरों पर मुहैया कराने की योजना बनाने के अलावा प्रबल राजनैतिक इच्छाशक्ति की ज़रूरत पड़ेगी। ***(स्रोत फीचर्स)***